नजरें

रजनी गुप्ता

नजरें

लगभग सौ उच्चाधिकारियों से भरे सभागार में में बैठी अनुमिता की आँखें एक-एक करके सभी वयस के पुरुषों की स्कैनिंग करते हुए अनायास एक जगह थम गईं। तभी माइक पर आज की बैठक की अध्यक्षता कर रहे संयुक्त निदेशक की आवाज कानों में पड़ी - 'अरे, ये तो सालों पुरानी जानी पहचानी आवाज है, सोचते हुए नजरें तेजी से अध्यक्ष जी के चेहरे पर गड़ी रह गईं और वे सोच के भँवर में चक्रवात की तरह तेजी से गोल-गोल घूमने लगीं। हाँ, यही अशोक कुमार शुक्ला तो था, आज से ठीक **10** साल

पहले जिसने भरे सभागार में उसकी खुलकर तारीफ करते हुए महाप्रबंधक के सामने कहा था - 'आपको पता, आपके संस्थान में कितनी बड़ी चिंतक और विदुषी अधिकारी भी हैं, अरे, ऐसे अचकचाकर मत देखिए, यही है मैडम अनुमिता जी, जिनकी जितनी तारीफ की जाए, कम है। कितनी तेजस्वी महिला हैं ये, इनका शानदार भाषण सुना है मैंने कि बस पूछिए मत...'

ऐन मौके पर उसके बॉस भी उसकी तरफ ध्यान से चौंकते हुए देखने लगे तो उसे बहुत अटपटा सा लगा तभी शुक्ला जी की आवाज ने फिर से उनका ध्यान खींचा - 'अरे मैडम, शर्माइए नहीं, आज आपकी मेधा को सामने आना ही चाहिए। आइए न यहाँ मंच पर और इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामंती स्वरूप पर बुनियादी सवाल उठाइए जैसा कि आपने पिछले सेमिनार में परिवार में स्त्री को लेकर बरती जा रही दुहरी मनोवृत्ति पर कितने तीखे शब्दों में प्रहार किया था। सबके सामने स्त्री सशक्तीकरण पर चंद लाइनें बोलिए न। सकुचाने की बात नहीं है - कहते हुए उसके हाथों में जबरन माइक थमा दिया गया। भौंचक खड़ी अनुमिता अचानक समझ नहीं पाई कि वह यहाँ इन अलग-अलग संस्थान के उच्चाधिकारियों के बीच भला ऐसा क्या बोल दे... तभी शुक्ला जी ने उसके कान के पास आकर फुसफुसाते हुए कहा - 'कुछ भी बोल दीजिए, आपका बॉस खुश हो जाएगा।'

अनुमिता ने महज पाँच मिनट में ही अपना सारगर्भित वक्तव्य प्रस्तुत किया जिसे सुनते ही सभागार में करतल ध्वनियाँ गूँज उठीं। उसके बाद तो यह शुक्ला उनके पीछे ही पड़ गया था। आए दिन फोन पर फोन करता व विभागीय बैठकें आयोजित करवाता और येन-केन प्रकारेण उसकी तारीफों के पुल बाँधते हुए नजदीकियाँ हासिल करने की जुगत में लगा रहता। एक खास किस्म के आत्मविश्वास से भरे उसके खुशनुमा व्यक्तित्व में इतनी सहजता व सरलता तो थी कि जब वह खुलकर ठहाका लगाकर हँसती तो सामने वाला देखता रह जाता। अनायास अनुमिता को उस दौर के तमाम पुराने सहकर्मी याद आने लगे जो प्रेम के नाम पर विकल अधीरता दर्शाते हुए उनका साथ लपकने के लिए आस-पास मँडराते रहते थे। अपने सहपाठी नवल की बातें दिमाग में बजने लगीं जो उससे एक बार चेन्नई में आयोजित संस्थान के प्रशिक्षण कार्यक्रम में टकरा गया था। मिलते ही जोशीली आवाज में दूर से ही चिल्लाने लगा - 'अरे अनुमिता यार, तुम तो जरा भी नहीं बदली, बिल्कुल पहले जैसी ही लग रही हो, सो स्मार्ट। वह थैंक्स कहकर जाने लगी तो अचानक से हाथ पकड़कर रोक लिया - 'अरे, पूरे **10** साल बाद मिली हो दुबारा सो कम से कम आज का खाना तो हम साथ खाएँगे ही, ये, मना नहीं करोगी, इतना तो हक बनता है यार, सालों पुरानी दोस्ती के

नाम। उस चहकती आवाज में घुली थी कुछ ऐसी आत्मीयता व ललक कि वह मना नहीं कर पाई - 'हूँ, अच्छा ठीक है, मिलते हैं इसी कैंटीन में, ठीक रात 8 बजे।' अरसे बाद वे आमने-सामने बैठे खा पी रहे थे और अपनी-अपनी कंपनी के हानि लाभ, आँकड़ेबाजी, प्रमोशन, बच्चे और परिवार आदि पर बातें करते-करते अचानक नवल की बातों का रुख पलट गया - 'अनुमिता यार, कुछ भी कर लो, रुपयों का कितना ही भंडार जमा कर लो, कितनी भी ऊँची तरक्की की उड़ान भर लो मगर कहीं से भी पूरी संतुष्टि नहीं मिलती। एक अजीब किस्म का खालीपन सा पसरा रहता, अजीब किस्म का अधूरापन यानी असंतोष सा हावी रहता।' वह जल्दी-जल्दी सारे अहसास जताने के लिए अकुला उठा।

'अरे, ये तो अंतहीन दौड़ है नवल। सच तो ये है कि असंतोष से ही पनपती है रुग्णता जिसे किसी भी थर्मामीटर से नहीं नापा जा सकता और फिर इसी रुग्णता से जन्मती हैं तमाम मानसिक बीमारियाँ भी सो अपनी सोच को पॉजिटिव दिशा में क्यों नहीं ले जाते जहाँ कुछ लीक से हटकर करते हुए अपनी निजी पहचान बना सको... एक जमाने में तुम्हारा तो स्पोर्ट्स में खासा दखल था न?' उसने पुलक भरी आवाज में विगत समय के चंद टुकड़े उसकी तरफ फेंके।

'हाँ, ठीक कह रही हो। अनु, आज मैं सारी सचाइयाँ तुमसे शेयर करना चाहता हूँ। कई बार रातों की नींद उड़ जाती सो इंटरनेट पर भटकता रहता। फेसबुक पर पनपती दोस्तियों पर भरोसा करके कई बार धोखे भी खाए है। एक बार तो ऐसा विचित्र वाकया घटा कि जिसे मैं लड़की समझकर चैट कर रहा था, वो तो लड़का निकला, हा, हा, हँसने हुए बोलने लगा'

अनुमिता, मैंने जीवन में सुख संतोष या प्यार पाने के लिए ढेरों जतन किए हैं मगर चैन कहीं नहीं मिला बल्कि आभासी दुनिया के रास्ते चलते हुए ऐसे-ऐसे अजीब अनुभव मिले जिन्हें शायद मैं पूरी तरह खोलकर बता भी नहीं सकता। इस दुनिया में मन बहलाने लायक मनोरंजन तो भरपूर हैं मगर पूरी तरह छद्म भरी निष्प्राण दुनिया है। सो मन में संतोष पाने की खातिर तमाम वर्जित चीजों को चखने से भी कतई परहेज नहीं किया मैंने। क्या-क्या ऊटपटाँग करके खुद को भरमाता-भटकता रहा? वाइन, औरत और मनमर्जी से जीने के उस सुरूर में पल भर के लिए ऐसा जरूर लगता था जैसे मैंने तृप्ति में डूबकर सब कुछ पा लिया है या जी भरकर जीवन जी लिया। उस पल सारे रंजोगम भूलकर किसी नई दुनिया में पहुँचने का अलौकिक सुख भी महसूसता मगर उसके बाद, होश आने पर... फिर वही खालीपन, वही अतृप्ति, वही अधूरापन सालने लगती। सच बताऊँ, जीने का सालों पुराना जोश या जज्बा ही चुक

गया। इस बारे में तुम्हीं कुछ हेल्प करो न? नाव आई फील टू लोनली...' कँपकँपाती आवाज में बोलते हुए उसके बर्ताव में एक अजीब तरह की लड़खड़ाहट शुमार होती गई।

'मैं? मैं इसमें भला क्या कर सकती हूँ? देखो नवल, अब हम बहुत आगे निकल आए हैं, उम्र के तूफानी वेग को पीछे छोड़ते हुए, सो उस उम्र के जोश या तूफानी जज्बात या जीने के उस पुराने जज्बे की तलाश ही फिजूल बात है।' उसने एक-एक शब्द को चबाते हुए पूरी सावधानी बरतते हुए कहा।

'अरे, ऐसे कैसे तुम इसे फिजूल बात कह सकती हो। गलत नजरिया। बेशक हम मध्यवयस में गुजर रहे है मगर हमारी रगों में अभी भी सारे रस रंगों का संगम प्रवाहित हो रहा है। अरे, तुम इस अहसास को यूँ ही मिटाने पर क्यों आमादा हो? जीवन से विरक्त तपस्वी, की तरह सूखी-सूखी सी बातें भला क्यों कर रही हो? जब कि मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे अंदर अभी भी हमारी पुरानी दोस्ती को लेकर वही पुराना लगाव जिंदा है, फिर इसे क्यों नकार रही हो? ये, तुम मुझसे झूठ नहीं बोल सकती, सच कह रहा हूँ न? तुम ऐसा नहीं कर सकती, अनुमिता, मैं अभी भी तुम्हारा साथ चाहता हूँ। कुछ अपने सुख पाने की खातिर कुछ नए सच गढ़े जा सकते हैं न? लिसन, अपनी-अपनी निजी जिंदगी जीते हुए भी हम एक और जिंदगी की शुरुआत करें क्या? मैं अभी भी आधी-अधूरी जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त हूँ। अनुमिता तुम्ही मुझे थाम कर मेरी इस अतृप्ति व ऊब भरी नीरस जिदंगी से छुटकारा दिला सकती हो, प्लीज मना मत करो,' ...मन में सालों से जमा गुबार को एक साथ उड़ेलते हुए नवल ने उसकी हथेलियों पर जैसे ही अपनी हथेली रखी कि उसने पूरी ताकत से उसे परे झटकते हुए तेज आवाज में प्रतिवाद किया - 'अरे, आखिर किस जिंदगी की बात कर रहे हो नवल? कालेज में दीपक, तुम और हम तीनों की दोस्ती थी मगर दीपक ने मुझे प्रपोज कर दिया और अब हम दोनों सुखी वैवाहिक जीवन जी रहे हैं, बस, इससे ज्यादा या इससे आगे की सचाई कुछ भी नहीं। और हाँ, उस समय तो तुम महत्वाकांक्षा के पंखों पर सवार आईएएस बनने की धुन में मग्न थे। वैसे तब, तुम्हारी एक मॉडर्न टाइप गर्लफ्रेंड हुआ करती थी, नाम याद नहीं आ रहा इस समय...' अनुमिता ने उसके अतीत के आउटडेटेड चेक को निरपेक्ष भाव से उसकी तरफ फेंका।

'हाँ, नवनीता नाम था उसका जिसने असम कैडर के एक आईएएस से शादी कर ली, मेरा चयन नहीं हो पाया था न? शायद इसलिए मैं...' कहते हुए उसके चेहरे पर हार या हताशा की गाढ़ी स्याही पुतने लगी। अनायास अनुमिता को याद आया कि यही वो बंदा था जो अक्सर लड़कियों से बढ़चढ़कर दोस्ती करने को उतावला रहता था मगर

पीठ पीछे अपने दोस्तों से यही कहता घूमता था - 'जस्ट फॉर फन, आईम नॉट सीरियस...' एक बार प्रसंगवश खुद उसके मुँह से ही ये राज उजागर हो गया था।

'ओके नवल, मिलते हैं फिर कभी, इस समय दीपक का फोन आ रहा है... कहते हुए अनुमिता ने फोन पर बतियाना शुरू कर दिया। उसके बाद भी कुछ दिन उसके फोन आते रहे और हर बार वही मनुहार भरी आवाज सुनकर उसने फोन उठाना ही बंद कर दिया। ऐसे वाकया याद करते ही उसे अजीब सी वितृष्णा होने लगी और धीरे-धीरे खुद को काटने लगीं।

अनुमिता उस समय को फिर से याद करने लगीं जब उसे दफ्तर के काम से बाहर निकलना पड़ता तो कार में लिफ्ट देकर मदद करने की पेशकश करने वाले यूँ ही प्रकट हो जाते। एकदम शुरू में तो वह संकोचवश सीधे मना नहीं कर पाईं सो पहली बार जैसे ही वह कार में पीछे बैठने लगी कि वे मनुहार करने लगते - 'मैडम, हम ड्राईवर तो है नहीं कि आप पीछे बैठ जाएँ। अरे, यहाँ हमारे पास बैठिए न, चलिए, इसी बहाने आज आपको ड्राइविंग सिखा देते हैं।'

'नहीं, नहीं, मुझे नहीं सीखनी... अचानक उसने ऊँची आवाज में मना करने पर वे बोले - 'ओके, बैठिए प्लीज।' वह सकुचाई सी बैठ गई कार में मद्धिम गति से संगीत गूँजता रहता और बतकहियाँ चलती रहतीं कि किसी बात पर उसे जोर से हँसी आ गई और वह ठठाकर हँसने लगीं कि अचानक उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया और अनुमिता ने उन्हें बेलिहाज तरीके से डपट दिया। गाहे-वगाहे ऐसे लंपट लोलुप लोग उसे कहीं न कहीं टकरा ही जाते मगर उम्र की चालीसवीं सीढ़ी तक आते-आते उनसे एक निश्चित दूरी बनाकर बात करना बखूबी सीखती गई वह। इसी तरह एक बार अनुमिता को दफ्तर के काम से शहर से दूरस्थ पहाड़ी शाखा दौरे पर जाना था। उत्तरांचल की सुरम्य वादियों के बीच बसी शाखा पहाड़ों के बीच बहती नदी के उस पार स्थित थी जहाँ पनीली हवाओं से आती खुशबू सूँघकर वह आपा बिसार कुर्सी की टेक लगाकर आँखें मूँदे अपने कल्पना संसार में खोई थी कि पीछे से बड़े साब ने चुपके से उनकी खुली पीठ पर अपना हाथ फेरने लगे और पलक झपकते पलटवार करने से कतई नहीं चूकी थी वह - 'सर, व्हाट इज दिस? उम्र में कितने बड़े हैं आप, मेरे पिता समान और ऐसी घटिया हरकतें? लानत है आप पर... गुस्से से न जाने क्या-क्या अनर्गल बड़बड़ाती जा रही थी वह - 'नॉनसेंस, टोटली रांग एट्टीट्युड टॉवर्ड लेडी ऑफिसर... आई काट वियर दिस, मैं शिकायत करूँगी आपके खिलाफ, ऊपर तक, उच्चाधिकारियों तक...। कहते हुए वे हेड ऑफिस फोन मिलाने लगी कि वे पाला पलट उनके पैर पकड़ गिड़गिड़ाने लगे - 'मैडम, गलती हो गई, अरे, आप तो खामखाह

नाराज होने लगीं। आपने बिल्कुल ठीक कहा, सचमुच मेरी बेटी जैसी ही तो हो तुम... बेध्यानी में यूँ ही हाथ चला गया होगा, सॉरी अगेन मैडम' ...कहते हुए वे उससे माफी पर माफी माँगने लगे - 'बिटिया, ओ बिटिया, अपने चाचा को माफ नहीं करेगी क्या? मेरी इज्जत अब मेरी बेटी के हाथों... उनकी वो गिड़गिड़ाती आवाज सुनकर वह पशोपेश में पड़ गई।

तब के जमाने में न तो मोबाइल, व्हाट्सप्प, फेसबुक वगैरा थे और न ही मीडिया का इतना दखल कि वह अंदरूनी मसलों को किसी बाहरी मंच पर लाकर पूरी ताकत से अपना प्रतिरोध दर्ज करा पाती। सो अपनी तीखी जुबान से ही वह विरोध जताना कभी नहीं भूली। ऐसी बेहूदी बातों से सबक लेकर उसने धीरे-धीरे खुद को समेटना शुरू कर दिया। सचमुच, पुरुष किसी भी उम्र के क्यों न हों, अपनी लंपटता से बाज क्यूँ कर नहीं आते? आखिर कब सीखेंगे वे स्त्री को अपने समकक्ष मनुष्य समझना? ऐसे सवाल उसे बेचैन कर देते। धीरे-धीरे शिकारी की तरह भेदती आँखें देखते ही अनुमिता सावधान हो जाती। दफ्तर का सीनियर कलीग मनीष गाहे उसकी तरफ मित्रवत नजरों से देखा करता। बातचीत की शुरुआत हुई थी किताबों के लेन-देन से और फिर वे धीरे-धीरे बौद्धिक, सामाजिक या राजनैतिक मुद्दों पर बहस करने लगते। कंपनी की कल्चरल कमेटी की कन्वेनर थी अनुमिता सो इस नाते कंपनी की पत्रिका निकालने की जिम्मेदारी उसी की थी। ऐसे में मनीष ने कइयों बार कुछ लेख वगैरह भी लिखे। उस दिन दफ्तर में निरीक्षण कमेटी की तैयारी के दौरान देर तक रुकना पड़ा। लौटते वक्त 8 बज रहे थे कि अचानक चेंबर में आकर बोलने लगे - 'अरे, कितनी मल्टी टास्किंग पर्सनैलिटी है आपकी, मैं तो हैरान हूँ आपकी काबिलियत देखकर, आपके हौसले और काम करने का जुनून देखते ही बनता है। सच बताएँ, इतनी कम उम्र में इतना सब हासिल करने का आपका ये जज्बा कमाल है'।

उसने गर्दन उठाकार उनकी तरफ देखा मगर बोली कुछ नहीं। आम तौर पर अपनी तारीफ सुनते ही अनुमिता के अंदर बैठी औरत सिर उठाकर उसे चेताने लगती। जरूर कोई गड़बड़ है वरना बेवजह कुछ भी बोलने वाला है नहीं ये बंदा... सोचते हुए प्रकट रूप से इतना भर बोली - 'थैंक्स... कहकर वह बाहर जाने के लिए उठने लगीं तो वह साथ-साथ चलते हुए बोलने लगा - 'मैम, कैन वी हैव डिनर टुगेदर, कैंडल लाइट डिनर...' सुनते ही वह तैश में आ गई और चीख पड़ी - 'क्या कहा? क्या समझते हो खुद को? हाउ यू डेयर, कहकर वह तेजी से लिफ्ट के अंदर घुसी कि अचानक उसे लिफ्ट में अकेले पाकर उसने अपने से जकड़ने की असफल कोशिश की, फिर तो उसके सीने में आग भड़क उठी - 'विहेव योरसेल्फ मिस्टर, स्टॉप इट... अब वह जोर से

चीखते हुए भड़क पड़ी। उसे अभी भी वे प्रसंग याद हैं कि इस घटना के बाद मनीष उससे बदला लेने पर उतारू हो गया और उसे तरह के नियमों के मकड़जाल में फँसाने की चालें चलने लगा। नमक मिर्च लगाकर उसके बारे में तमाम अनर्गल बातें कहाँ-कहाँ फैलाता रहा या क्या-क्या शिकायतें करता रहा। कई बार उसे कटघरे में खड़ा करके जवाब-तलब भी किया गया मगर चाहकर भी कोई उसके काम में नुक्स न निकाल सका और ऐसे कुंठित लोग उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाए।

जिंदगी आगे बढ़ती रहीं और ऐसे लोग उसकी छवि खराब करने की चालें-कुचालें चलते रहे मगर लोग तो अभी भी वही थे न? उनका तंग नजरिया अभी भी जस का तस, स्त्री के प्रति लोलुपता व जबरदस्त पूर्वाग्रह से भरा... उसे याद आया, एक बार दफ्तर के भवन में आग लगने की अफवाह उड़ी तो सबसे सीनियर शर्मा जी लगभग दौड़ते-हाँफते हुए उसके चेंबर में आए और हड़बड़ाते हुए बोले - 'अरे, मैडम, कहाँ हो? बाहर निकलिए न? यहाँ क्या कर रहीं हैं, पता है? आग तेजी से चारों तरफ फैलने लगी हैं, चलिए पकड़िए मेरा हाथ और कूद जाइए इस खिड़की से बाहर बालकनी की तरफ।' उनकी हमदर्द आवाज सुनकर लगा कि वह खामखाह इन पर शक कर रही थी जबकि ये तो इनसानियत के नाते मुझे बचाने आए हैं।

भले इनसान है ये तो... सोचते हुए जैसे ही उसने उनका हाथ थामा कि उन्होंने अपना असली रूप दिखाने में पल भर की देर नहीं लगाई। किस किसकी बदतमीजी याद करती रहे वह और कब तक? आखिर क्यूँ कर स्त्री को वस्तु की तरह बरतने के आदी हैं ये पुरुष वर्ग? आज जब वे सालों बाद पलटकर अपने जीए जीवन को देखती हैं तो रह रहकर तमाम चमकते चेहरों पर चढ़ी नकली परतें याद आने लगीं। पुरुष का नजरिया औरत के प्रति इतना एकतरफा क्यूँ कर है कि सालों वाद भी वही आवाजें पिछियाती हुई सुनाई पड़ती जिनमें शुमार थी देह के प्रति वही लोलुपता - 'मैं रोमांस की हर इतिहा से गुजरना चाहता हूँ, मैं आज भी तुम्हारा साथ चाहता हूँ, आदि-आदि। आखिर क्यों इन पुरुषों को ऐसा लगता जैसे हर महिला सहकर्मी के जीवन में स्थायी रूप से रिक्त स्थान होगा ही जिसकी पूर्ति के लिए केवल वे ही किसी सुपात्र की तरह जगह भरने के लिए लपकते रहते, असमय-कुसमय लपकते वन्य जानवर की तरह उन्हें नोंचने-खसोटने के लिए लालायित। सवाल आज भी सीने में दहकने लगता। क्यूँ कर इन्हें कोई काली, मोटी या औसत स्त्री रास नहीं आतीं? सुंदर, कमसिन या नाजुक लड़कियों का शिकार करने की टोह में बौराए घूमते इन बहेलियों का आखिर इलाज क्या है? क्यूँ कर इन्हें मेधावी, सशक्त और मजबूत कद काठी की आत्मविश्वासी

स्त्रियाँ नहीं सुहातीं? सवाल ही सवाल औंधे मुँह लटकते बर्रेयों की छत्तोंत के आसपास मँडराते-भनभना रहे थे।

तो क्या यही समूची सचाई है? तस्वीर को पलटकर देखने लगी तो कुछ और ही चेहरे दिखने लगे जिनके साथ ने उसके जीवन को नया अर्थ, नया विस्तार दिया व उसके व्यक्तित्व को संवर्धित भी किया। नहीं, ये संपूर्ण सच नहीं हो सकता। सोचने पर कुछ सुहानी यादें मन को भिगोने लगीं। एक बार उसका तबादला नॉर्थ ईस्ट में हो गया तब कितनी हताश हो उठी थी वह मगर ऐन मौंके पर दफ्तर के कलीग नमन ने कितने निस्वार्थ भाव से उसका खयाल रखा। न केवल उसके रहने खाने की व्यवस्था की बल्कि इतना स्वस्थ्य रिश्ता वह कभी नहीं भूल सकती - 'मैम, चलिए, आज आपका बिल मैं ही जमा कर आऊँगा, वही से गुजरना है सो आपका काम हो जाएगा, बस। मैम, कल म्यूजिक कंसर्ट में चलिएगा, आप कितना अच्छा वायलिन बजाती है, वहाँ परफार्म करना है आपको? मैंने आपका नाम दिया है। फिर अपनी पत्नी के साथ उसे म्यूजिक नाइट में ले गया जहाँ उसने भी अपनी परफारमेंस दी। वहाँ से लौटते हुए घर पर खाना खिलाया उसने। उस परिवार ने उसकी कितनी तरह से कितनी बार मदद की जिसे शब्दों में बाँध पाना संभव नहीं। तब से उसकी सोच के क्षितिज पर नया सूरज चमका। वाकई कुछ लोग सचमुच इतने उदार और भले इनसान होते हैं कि वापस घर लौटते वक्त उसके घर के सभी लोग उसे भींगीं आँखों से देखते वाय करते रहे।

तब पहली बार उसे इस सच्चाई का अहसास हुआ कि हर पुरुष एक जैसे छिछोरे टाइप कतई नहीं होते बल्कि संवेदना के धरातल में जितनी मदद उसके सीनियर नितिन ने की थी, उतनी किसी ने नहीं जब पहली बार उसकी पोस्टिंग सुदूर देहात में कर दी गई तब नितिन के परिवार वालों ने उसे अपनी बेटी की तरह मानकर अपने घर पर पूरे मान-सम्मान से रखा। तभी से उसकी सोच में घुसा पूर्वाग्रह का कीड़ा भी छिटकता गया और उसे अहसास हुआ कि दाल में कंकड़ तो हो सकते हैं मगर समूचे कंकड़ में दाल होना असंभव है। एक बार असम से आए उसके जी.एम. साहब इतने बेहतरीन इनसान थे कि अपनी लेडी स्टाफ के प्रति बेहद आदर से पेश आते। बात-बात पर - 'अरे स्त्री शक्ति हैं आप लोग! सचमुच, मैं आप पर अपना फैसला थोपने में कतई यकीन नहीं करता बल्कि चाहता हूँ कि आप लोग खुद अपने विभाग के मालिक हो सो खुद निर्णय लेकर चला सकते हो। कोई मदद की जरूरत पड़ने पर हम हैं न! न तो वे जान-बूझकर काम में नुस्ख निकालते, न कुर्सी का रोब झाड़ते। अक्सर बैठक के समय कह देते - ये बस चांस की बात है कि आज हम यहाँ है जबकि कल के दिन आप सबको भी यहीं आना है। नथिंग स्पेशल।'

हाँ, हर पुरुष एक सा नहीं होता बल्कि संवदेना के धरातल पर कई बार स्त्रियों से बेहतर सोच व संवेदना वाले साथी मिलते गए उसे जब वह कॉलेज में पढ़ती थी तब उसका प्यारा सा दोस्त था सुवंश जो गर्ल्स हॉस्टल के अंदर न आ पाने के कारण उसे मेडिकल सेंटर के पीछे बने चबूतरे पर बैठकर टेस्ट ऑफ रीजनिंग की गुत्थियों को कितने करीने से मुस्कराते सुलझा दिया करता और शायद यह उसी के पढ़ाने का असर था कि वह पहली बार में ही इस अखिल भारतीय नौकरी में चुन ली गई। किसी मौके पर उसने सुवंश को इसका क्रेडिट देना चाहा तो वो हँसकर बोला - 'न, हमने साथ में बैठकर पढ़ा था, पढ़ाया तो नहीं। वैसे पढ़ाना तो बहुत कुछ चाहता था पर तुमने तो वे सबक सीखे ही नहीं... कहकर वह उसे चिढ़ाने लगा और दोनो ठठाकर हँस पड़े।

ऐसे लोगों की सूरतें अनायास जेहन में कौंधने लगी जिनमें से उसका जूनियर नीलेश भी था जिसने कितनी सहजता से उसे कंप्यूटर की बारीक बातें सिखा दी थी। उसका सेंस ऑफ ह्युमर इतना जबरदस्त कि मुश्किल से मुश्किल हालातों पर भी वह खुद पर भी हँस लेता और अनुमिता पर भी। उसके साथ कभी उसे वैसी असुरक्षा या लड़की होने जैसा अनकहा डर वगैरा भी नहीं व्यापा। वे देर तक कैंटीन में बैठकर बहसियाते रहते और कभी-कभार बाइक पर लंबी सैर पर निकल जाते मगर कभी कोई ऐसी-वैसी बेहूदगी वाला प्रसंग नहीं। ऐसे प्यारे दोस्तों के बीच बड़ी सहजता से वे कब एक-दूसरे के कंधे पर हाथ टिका देते या कब हाथ मिला लेते, याद ही नहीं। वे अनुभूतियाँ इतनी सुंदर, सहज व निश्छल प्यार भरी है कि जब वो हमेशा-हमेशा के लिए हॉस्टल छोड़कर लौट रही थी तो सारे दोस्तों से वह कितनी बार गले मिली। उनमें से कुछ के तो भावुकतावश आँसू भी भर आए मगर उस छुअन में कितनी मासूमियत, कितनी सचाई और कितनी निश्छलता शुमार थी कि आज भी वे लमहे याद करो तो मन भर आता है। दूर-दूर तक कतई कोई आपत्तिजनक अहसास नहीं। शायद उसके अंदर सहजता भी ऐसे दोस्तों के साथ लंबी संगत के चलते आई है जिसके चलते उसे आम तौर पर लड़कों से एक निश्चित दूरी बरतने की जरूरत ही महसूस नहीं हुई कभी।

कॉलेज के अधिकांश दोस्त ऐसे ही तो होते हैं जिनके साथ उसने पढ़ाई की और कंपटीशन की तैयारियों में खूब मदद भी मिली। नरेन ऐसा ही था जिसके साथ वह अक्सर शाम ढले लंबी सैर पर निकल जाती और वे देर तक अपने-अपने घर की तमाम मुद्दों पर खुलकर बतियाते मगर कभी किसी किस्म की बेहयाई भरा बरताव नहीं दिखा उसे बल्कि उल्टी उसकी समझ विकसित हुई। वो दौर ऐसा ही था जब नरेन के साथ एक बार उसे दिल्ली हाट से लौटते हुए देर हो गई तो चौकीदार ने हॉस्टल के अंदर नहीं जाने दिया तब कैंपस में बने शू सेंटर पर सारी रात बातें करते हुए बिता दी

मगर कितनी नजदीकियों के बावजूद ऐसी चीप हरकतों के बारे में कल्पना तक नहीं कर सकते। धीरे-धीरे वे सब अपने-अपने करियर की अलग-अलग दिशाओं की तरफ मुड़ते गए। बड़े मीठे व सुहाने दिन थे वे जब सब पानी में भींगते हुए बरसात का सुख उठाते और होली जैसे त्योहारों पर पूरी रंगीनियत से एक-दूसरे पर रंग गुलाल फेंकते रहते। कितने भोले, सहज व सहृदय साथी मिले थे उसे, शायद तभी वो बड़ी सहजता से पुरुषों से साधिकार बात कर लेती या बात करने में जरा भी संकोच या हिचक कभी नहीं रही उसे।

वक्त। अपनी गति से सूरज के साथ कदमताल करता हुआ हर दिन थककर सुस्ताउने रात की खोह में दुबक जाता और फिर से अगली सुबह अपनी नई नकोर सज-धज के साथ आ धमकता। यूँ ही साल-दर-साल गुजरते रहे मगर हर बार की तरह फिर वही दृश्य। इन पुरुषों की फितरत नहीं बदलती बल्कि नए-नए रूप धरकर वे अपनी काकदृष्टि से अपने शिकार की टोह लेते रहते और मौका मिलते ही फिर उन्हें घेरने की जुगत बिठाते हुए गिद्धनुमा नजर से झटपट शिकारी को धर दबोचने की फिराक में लगे रहते। सालों से ये कैसी बेहयाई देखती आ रही है वह जहाँ शिकारी को न तो अपनी कम उम्र की शर्मोहया, न ही साठ पार वाली पकी उम्र का लिहाज। जब देखो तब उनकी हवस की लौ आज भी लपलपाती नजर आती, भले ही अब जिनमें लपट बनने की कूबत नहीं रही मगर इस धीमी आँच में बुझती राख में से बची-खुची अलक्षित चिंगारी पर गलती से भी किसी कोमलांगी का पैर पड़ जाए तो उसके जल जाने का खतरा तो है ही, सोच की सुई इस नए दौर की तरफ मुड़ गई।

इन दिनों समाँ कुछ बदला तो है। दफ्तर में नई पीढ़ी की तेजतर्रार लड़कियों को देखती जिन्हें पुरुषों को सीढ़ी बनाकर अपना उल्लू सीधा करने की कला में महारत हासिल है तभी तो नेहा ने किस तरह बॉस के साथ साउथ जाकर ट्रेनिंग का प्रोजेक्ट बनाकर प्रमोशन के साथ मनमाफिक पोस्टिंग भी लपक ली। कैसे तो उस दिन इतरा-इतराकर बता रही थी - 'बड़ी मेहनत करनी पड़ती है इसके लिए। भई, अपुन तो तेरे जैसे पढ़ाकू हैं नहीं, सो व्हाट? कुछ तो अपुन के पास भी जादू की पुड़िया हैं। वो हुनर तुम्हारे वश का तो कतई नहीं अनुमिता, पक्की बात।' बिना लागलपेट के सीधे उसके मुँह पर जैसे तमाचा मारकर चल दी थी बॉस के चेंबर में। मन में आया, कह दें कि विजनिस ग्रोथ के नाम पर छोटे कपड़े पहनकर लांग ड्राइव पर जाना या नए प्रोजेक्ट। पर बॉस के साथ विदेश यात्रा पर तो हम कभी न जा पाएँगे सो हम ऐसे भले, पर न जाने क्या सोचकर उसने बोलने से खुद को रोक लिया। सचमुच, न तो इनमें मेहनत करने का उतना माद्दा है, न ही उतनी काबिलियत फिर भी शिखर पर तो यहीं जाएँगी। सोचकर

मन में कसक जरूर उठती पर नहीं, उसे ऐसे लोलुप पुरुषों को सीढ़ी बनाकर खुद का इस्तेमाल नहीं होने देना।

आए दिन बदलते इन तथाकथित बॉसेज का क्या भरोसा? कब ये अपना मतलब सिद्ध होते ही उसे धक्का देकर कहीं दूर खंदक-खाईं में फेंक दें। नमिता के साथ यही तो हुआ था जब उसने अपने बॉस की बढ़ती फरमाइशों को नकारना शुरू कर दिया। कितने महीनों तंग करता रहा वह। उसके आत्मविश्वास की चमक पर पानी फेर दिया था उसने तब हिम्मत करके उसने ऊपर शिकायत कर दी। महीनों अवसादग्रस्त भी रही वह मगर पीछे नहीं हटी। नकार सुनने की आदत ही कहाँ होती हैं इन अहंकारी साहबों में। उसके अहम को इतनी ठेस पहुँची थी जब उसने सबके सामने लताड़ा था उसे। कितनी कुचर्चा हुई थी दफ्तर में। तब सारे पुरुषों में किस कदर एका हो जाती है, वह सीन तो उसकी आँखों में आज भी लाइव है। अपनी महिला सहकर्मी के प्रति न तो इनकी नजरें बदलीं, न नजरिया। पता नहीं कब वे उन्हें अपने समकक्ष समझ पाएँगे या कब उनकी मेधा व मेहनत की कद्र करना सीख पाएँगे? अनुमिता इस बहुरूपिए समय में चेहरों पर चढ़े मुखोटों की असलियत ताड़कर सोच में पड़ जाती।

तभी उनकी नजर फिर से सहायक निदेशक से उपनिदेशक फिर उपनिदेशक से निदेशक बने आत्म मुग्धता के नशे में चूर अशोक कुमार की तरफ अटक गई जिन्होंने उसी सभागार में फिर से अपने इर्द-गिर्द वैसी ही दो तीन स्मार्ट, सुंदर व कमसिन नवयुवतियों बनाम फिसलती मछलियों को बिठा रखा था जिनकी लिखी छुटपुट कवितानुमा पंक्तियों को वे सबके सामने उन्हीं के मुखारविंद से पढ़वाकर करवाकर हॉल में वाह-वाह की तालियाँ पिटवा रहे थे। मुदितमना बालाएँ उनकी कही हर बात को वेद वाक्य मानकर - 'जी सर, यस सर, वैलकम सर, कहते हुए उनके आगे-पीछे चमकते प्रभा मंडल के वृत्त में कैमरों की चकाचौंध के बीच ढेर सारी तस्वीरें अपने-अपने स्मार्ट फोन में कैद करते हुए उनकी महानता की विरुदावली गाए जा रहीं थीं। मोबाइल कैमरों से क्लिक की लगातार आती आवाजों के बीच तमाम कंठों से चहकती स्वरलहरियाँ सभागार में साफ-साफ सुनी जा सकतीं थी। अरे लो, यहाँ भी तो वही, मतलब साधने वाला खेल शुरू हो गया है। साँप-सीढ़ी के इस खेल में किसी की भी हार-जीत तय नहीं हो सकती। कौन, कब, किसे, अचानक रास्ते में काट ले या कब किसे किस तरह की सीढ़ियाँ मिल जाए, कोई नहीं जानता, मगर खेल है कि बदस्तूर जारी है।